International Journal of Enhanced Research in Educational Development (IJERED)
ISSN: 2320-8708, Vol. 8 Issue 4, July-August, 2020, Impact Factor: 5.246

तीर्थंकर महावीर स्वामी के शैक्षिक विचारों की वर्तमान समय में उपादेयता

दीप्ति[1], प्रो. ऊषा तिवारी[2]

[1]शोधार्थिनी शिक्षा विभाग, शिक्षा विभाग,राधा गोविन्द विश्वविद्यालय, रामगढ़ झारखण्ड
[2]शोध निर्देशिका व आचार्य शिक्षा विभाग राधा गोविन्द विश्वविद्यालय, रामगढ़, झारखण्ड

सारांश

शिक्षा का सम्बन्ध सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने से रहा है। समाज को दुर्प्रवृत्तियों से रक्षा करने के लिए नैतिक शिक्षा दी जाती थी। जैन शिक्षा का संबंध समानरूप सभी वर्ग विशेष के लोगों को शिक्षा प्रदान करने का रहा है। इस समय गुरू-शिष्य में आपस में प्रेमभाव भी भी शिष्य अपने गुरु के प्रति विनयवान रहता था। जैनाचार्य ने शिक्षा का माध्यम मातृभाषा और लोकभाषाओं को बनाया, यही कारण है कि उस समय की लोक भाषाओं प्राकृत अर्धमागधी प्राकृत, शौरसेनी प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में साहित्य का सृजन हुआ। "शिक्षा" शब्द संस्कृत भाषा की शिक्षु धातु में (अ) प्रत्यय लगाने से बना है। शिशु का अर्थ है सीखना और सिखाना अतः शिशु शब्दका शाब्दिक अर्थ हुआ सीखने व सीखाने की क्रिया। शिक्षा शब्द के लिए अंग्रेजी में एजुकेशन शब्द का प्रयोग किया जाता है। ऐजुकेशन शब्द लेटिन भाषा के एजुकेटम शब्द से मिलकर बना है। ए (E) का अर्थ है अंदर से, जबकि दयूको का अर्थ है आगे बढ़ना। इस प्रकार एजुकेशन का अर्थ होता है- आन्तरिक शक्तियों को बाहर की ओर निकालना या निकालने की प्रक्रिया ।

मुख्य शब्द: लिपिज्ञान, अंकज्ञान एवं सामान्य

विद्या मनुष्य को विनयशील बनाती है। विनय से वह योग्य हो जाता है। योग्यता से धन अर्जित होता है और धर्म की प्राप्ति होती है। जैन ग्रंथ आदिपुराण के अनुसार विद्या ही मनुष्य को यश देने वाली है, विद्या ही आत्म-कल्याण करने वाली है, विद्या ही कामधेनु है, विद्या ही चिन्तामणि है और विद्या ही अर्थ, काम एवं धर्म से सिद्ध सम्पदाओं को प्रदान करने वाली है। इतना ही नहीं, विद्या ही मित्र है. विद्या ही कल्याण करने वाली है, विद्या ही साथ-साथ जाने बाली सम्पदा है और विद्या ही समस्त प्रयोजनों को पूर्ण करने वाली है। शिक्षा के माध्यम से ही मनुष्य की बुद्धि और विवेक का विकास होता है। मनुष्य जीवनपर्यन्त विभिन्न परिवेश में रहकर शिक्षा प्राप्त करता है और अपने ज्ञान की वृद्धि करता है।

शिक्षा के सम्बन्ध में विभिन्न शिक्षाविदों ने अपने अपने मत प्रकट किये जिनमें कुछ भारतीय शिक्षाविद है तो कुछ भारतीयेतर भारतीय विचारक स्वामी विक्कानन्द के अनुसार- शिक्षा का उद्देश्य पूर्णता को प्राप्त करना है। उनके शब्दों में " मनुष्य की पूर्वनिहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना शिक्षा है।" उपनिशद् के अनुसार "शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य निर्वाण है

शंकराचार्य के अनुसार "शिक्षा स्वयं की अनुभूति है" गांधी जी के अनुसार शिक्षा को व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यामिक विकास की प्रक्रिया के रूप में स्पष्ट किया। उनके शब्दों में शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक तथा मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क तथा आत्मा के सर्वांगणी विकास से है।
पश्चात्य विचारकों के अनुसार शिक्षा का स्वरूप- पाश्चात्य शिक्षाविदों में प्लेटो का नाम अग्रणीय है। प्लेटो ने शिक्षा के क्षेत्र में बहुत गम्भीरत से विचार किया है। उनके अनुसार शिक्षा उस प्रशिक्षण को कहेंगे जो बच्चों में उचित आदतें डाले जिसे उनके अन्दर सदगुणों, सद्विचारों का विकास हो

जॉन डीबी ने शिक्षा को परिभाषित करते हुये कहा है-'शिक्षा समाज में निहित विशेय-वस्तु को विकसित तथा गम्भीर बनाने के लिये अनुभवों के पुर्ननिर्माण की एक अनवरत प्रक्रिया है, जिसके साथ व्यक्ति उन अनुभवों के पुननिर्माण सम्बन्धी सभी क्रियायों पर पूर्णरूपेण नियन्त्रण प्राप्त कर लेता है या पूर्ण रूप से उसका अभ्यस्त हो जाता है।"

उपर्युक्त कथन के अध्ययन के बाद हम कह सकते हैं कि पाश्चात्य विचारक जीवन की सामान्य प्रक्रिया तक ही सीमित है, जबकि भारतीय विचारक जीवन की सामान्य प्रक्रिया से लेकर उसके चरमोत्कर्स पर बल देते हैं। जैन आचायों ने उसी शिक्षा को काम माना है, जिसके द्वारा दुःखों से मुक्ति मिलती है।' शिक्षा जीवन में विवेक के समुचित विकास के लिए तथा दुःख से मुक्ति प्राप्ति के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए एक अनिवार्य आवश्यकता है। भारतीय प्राचीना संस्कृति को दो धाराएं है- वैदिक एवं भ्रमण भ्रमण परम्परा के अन्तर्गत दो शाखाएं मुख्य रूप से है जैन एवं बौद्ध जैनशिक्षा जैनदर्शन के अनुसार युग के आदि में चौबीस तीर्थंकर हुए, जिनमें प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ एवं अंतिम तीर्थंकर श्री महावीर भगवान है। इन तीर्थंकर भगवान के उपदेश जैन शिक्षा के प्रमुख आधार है।

प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ ये मानव समाज व्यवस्था के कर्णधार है। इन्होंने राजा के रूप में असि, मांस, कृषि विद्या, वाणिज्य एवं शिल्प की शिक्षा प्रदान की लिपि विद्या सिखाकर शिक्षा की नींव डाली और भाषिक संपेशण की व्यवस्था दी। कृषि आदि के माध्यम से सामाजिक वृत्तियो का पोषण और लूटपाट, हत्या, चोरी आदि आसामाजिक प्रवृत्तियों का निषेध किया। "अपनी पुत्री ब्राह्मी और सुन्दरी को अंक एवं अक्षर लिखने की शिक्षा प्रदान की।

भगवान महावीर का जब जन्म हुआ था तब चारों ओर धर्मिक और आध्यात्मिक आन्दोलनों का युग था जिसमें सभी संप्रदाय अपने अपने मत और पंथ को श्रेष्ठ बताकर दूसरों की निन्दा कर रहे थे। ऐसे समय में भगवान महावीर ने पूर्व तीर्थंकर का अनुकरण किया और अनेकान्तवाद, स्याद्वाद की शिक्षा लोक भाषा में प्रदान की अनेकान्तवाद के अनुसार प्रत्येक वस्तु अनन्तधर्मात्मक है। जिसमें परस्पर विरोधी धर्मों का सह अस्तित्व होता है। यह सिद्धान्त जीवन के हर क्षेत्र में समन्वयात्मक दृष्टिकोण को अपनाने की कला सिखाता है। इन्होंने समाज में व्याप्त सामाजिक दृष्टि से धार्मिक आडम्बर अन्धविश्वास और अन्धरूड़ियों को दूर करने की शिक्षा दी। वेद हिंसा विहित हिंसा के विरुद्ध अहिंसा का उपदेश दिया। भगवान महावीर के उपदेशों का संकलन हमें अनेक जैन ग्रन्थों में प्राप्त होता है, जैसे- आचारांग सूत्रकृतांग, स्थानांग समवायांग, धर्मकथा आदि।

जैन परम्परा में मूलतः आध्यात्मिक शिक्षा प्रदान की जाती है, लेकिन इसका उद्देश्य लोक कल्याण के साथ-साथ आत्म कल्याण था। लौकिक शिक्षा भी इस प्रकार प्रदान की जाती कि मानव आध्यात्मिक उपलब्तियों को प्राप्त कर सकें इस शिक्षा में दुःखमुक्ति या तनावमुक्ति के जो सूत्र प्रतिपादित किए गए है. वे लौकिक और आध्यात्मिक दोनों ही जीवन में समानरूप से उपयोगी है।

जैन शिक्षा में बालक-बालिका को समान रूप से शिक्षा प्रदान करने का उल्लेख किया गया है। आदिपुराण में कहा गया है कि "जब श्रीऋषभदेव के बालिका बालक वयस्क हुए तो उन्होंने स्वयं ही शिक्षारम्भ कराई। इस संदर्भ में लिखा है कि रूप लावण्य और शील से समन्वित होने पर भी विद्या से विभूषित होना परम आवश्यक है। इस लोक में विद्वान व्यक्ति ही सम्मान प्राप्त करते है, विद्या ही मनुष्य को यश देनेवाली है, विद्या ही आत्मकल्याण करनेवाली है और अच्छी तरह से अभ्यास की गयी विद्या समस्त मनोरथों को पूर्ण करती है।

कन्या हो या पुत्र दोनों को समान रूप से विद्यार्जन करना चाहिए। कल्पलता के समान समस्त सुखों, ऐश्वयों और वैभव को प्रप्ति विद्या द्वारा ही होती है। अतएव बाल्यकाल से विद्याप्राप्ति के लिए निरन्तर सचेष्ट रहना चाहिए।

शिक्षा प्राप्त करने की आयु और तत्सम्बन्धी संस्कार- शिक्षा का आरम्भ किस उम्र से करना चाहिए? यह भी विचार विचारणी है। आज दो-ढाई वर्ष के बालक को विद्यालय भेजा जाता है, जो उचित प्रतीत नहीं होता। आदिपुराण में आवकों की क्रियाओं का वर्णन आया है। जिसमें विद्यारम्भ के समय किये जाने वाले संस्कार तथा आयु संबंधी उल्लेख है. लिपिसंस्कार 2. उपनीति संस्कार 3. व्रतचर्या 4. दीक्षान्त या समान व्रतावरण-

लिपिसंस्कार तब किया जाता था जब बालक का मस्तिष्क शिक्षा ग्रहण करने योग्य हो जाता था तब शिक्षा का प्रारम्भ उपीनति संस्कार के पश्चात् किया जाता था। वैदिक ग्रंथ मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति में उपनयन संस्कार का विस्तार पूर्वक वर्णन आया है तथा उपनयन के अनन्तर ही शिक्षा का प्रारम्भ बताया गया है. लिपिज्ञान, अंकज्ञान या शास्त्रों का ज्ञान उपनयन के अनन्तर ही आरम्भ किया जाता है, पर आदिपुराण में उपनीति क्रिया के पूर्व लिपिसंस्कार को स्थान दिया गया है।

जब बालक पांच वर्ष का हो जाय तब उसका विधिवत् अक्षरारम्भ करना चाहिए। उपनयन का काल तो आठ वर्ष की अवस्था के पहले नहीं आता है। अतएव आदिपुराण की दृष्टि में उपनयन संस्कार माध्यमिक शिक्षा के पूर्व होना चाहिए। अध्ययन समय तक ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना चाहिए और इसमें अंक और अक्षरों के अभ्यास के लिए तीन वर्ष का समय निश्चित किया गया है।

व्रतचर्या व्रतचर्या का अभिप्राय विद्याध्ययन के समय संयमित जीवन या यापन करने में है। विद्यार्थी का एक ही लक्ष्य रहता है विद्याध्ययन वह अपनी इसी साधना को पूर्ण करने के लिए प्रयत्नशील रहता है।

व्रतावरण क्रिया- अध्ययन कार्य के बारह अथवा सोलह वर्ष व्यतीत हो जाने पर व्रतावतरण क्रिया की जाती है। इसकी तुलना हम समावर्तन संस्कार से कर सकते हैं ब्रह्मचर्य धारण करते समय शारीरिक आभूषण, संस्कार एवं भड़कीले वस्त्रों का त्याग किया था, अब गुरु की अनुमति से पुनः वस्त्राभूषणों को धारण किया जाता है। इस प्रकार आज भी यदि व्रतों का पालन करते हुए सादगीपूर्ण तरीके से अध्ययन हो, तो बौद्धिक विकास के साथ साथ भावात्मक एवं आध्यात्मिक विकास सहज ही हो सकता है।

जैन शिक्षा पद्धति में शिक्षण की सोलह विधियां बताई गई हैं। निसर्ग 2 अधिगम 3 निक्षेप 4 प्रमाण 5 नया 6 स्वाध्याय 7 प्रश्नोत्तर 8 पाठ विधि 9 श्रवण 10 पद विधि 11 पदार्थ विधि 12 प्ररूपणा विधि 13 उपक्रम 14 व्याख्या विधि 15 शास्त्रार्थ विधि 16 संगोष्ठी विधि आदि पुराण में भी निम्न विधियों का उल्लेख प्राप्त होता है।

पाठ विधि गुरु शिष्यों को पाठ विधि द्वारा और अक्षर ज्ञान की शिक्षा देता है। वह किसी काष्ठ पट्टिका के ऊपर अंक या अक्षर देता है शिष्य उन अक्षर या अंकों का अनुकरण करता है और उन्हें लिखकर कण्डस्थ करता है। इस विधि का प्रारम्भ आदि तीर्थंकर ऋषभदेव से होता है। उन्होंने अपनी कन्याओं को इस पाठ विधि द्वारा ही शिक्षा दी थी। इस विधि में मूलतः तीन शिक्षा तत्व परिगाणित है- उच्चारण की स्पष्टता, लेखनकला का अभ्यास और **तर्कात्मक संख्या प्रणाली**

प्रश्नोत्तर विधि प्रश्नोत्तर विधि का प्रयोग आदिपुराण में पाया जाता है। श्रेणिक राजा प्रश्नकर्ता शिष्य के प्रतीक है और गौतम गणधर उळारदाळया गुरु के इस प्रकार शिष्य गुरु से प्रश्न करता है और गुरु चमत्कारपूर्ण उकार देकर शिष्य को सन्तुष्ट करते है। इस प्रणाली द्वारा विषयों को हृदयंगम करने में विशेष सुविधा होती है। शास्त्रार्थ विधि–शास्त्रार्थ विधि प्राचीन शिक्षा पद्धति की प्रमुख विधि है। इस विधि में पूर्व और उत्तर पक्ष की स्थापना तर्क, विकल्पों और बौद्धिक प्रयोगों द्वारा की जाती है। व्याख्या विधि शब्दों द्वारा सामान्य या विशेष रूप से जितना भी व्याख्यान किया जाता है वह सब भाषा के अन्तर्गत आता है। भाषा ही अभिव्यक्ति का माध्यम है।

पाठक्रम- पांच वर्ष के बालक-बालिकाओं को लिपिज्ञान, अंकज्ञान एवं सामान्य भाषाविज्ञान का ज्ञान कराया जाता था। गणित ज्ञान में जोड़, गुणा, बाकी, भाग आदि की शिक्षा भी प्रदान की जाती थी। आठ वर्ष की अवस्था तक बालक घर पर ही रहकर लिखना पढ़ना और हिसाब बनाना सीखता था। यह एक प्रकार से प्राथमिक शिक्षा थी। शिक्षा प्राप्त करना सभी व्यक्ति के लिए अनिवार्य था। आठ वर्श की आयु के पश्चात् शास्त्रीय शिक्षा प्रारम्भ होती थी, यह शिक्षा राजकुमार सामन्त वर्ग, श्रेष्ठिवर्ग के साथ-साथ अन्य व्यक्तियों को भी प्रदान की जाती थी।

भगवान महावीर की दृष्टि में सामान्य शिक्षा एवं आध्यात्मिक शिक्षा किसी वर्गविशेष के लिए नहीं, वरन् सभी के लिए सरलता से ग्राह्य थी। इन्होंने सभी वर्णों के स्त्री-पुरुषों को आध्यात्मिक विकास का समान रूप से अधिकारी माना था।

पाठ्यक्रम के अन्तर्गत जैन शिक्षा पद्धति के चार विभाग किए गए है प्रथमानुयोग (धर्मकथा), द्रव्यानुयोग, करणानुयोग (गणित) एवं चरणानुयोग की शिक्षा। इसके अलावा बंद, व्याकरण, ज्योतिष, निरुक्त, इतिहास, पुराण, मीमांसा और न्यायशास्त्र आदि अध्यात्मिक विषयों के साथ लौकिक विषय कामनीति हस्तितन्त्र, अश्वतन्त्र आयुर्वेद निमितशास्त्र, शकुनशास्त्र और तन्त्रशास्त्र आदि का अध्ययन कराया जाता था।

इस प्रकार जैन आचार शास्त्र में क्षमा, मृदुता, सरलता, संतोष, सहिष्णुता, निर्भरता एवं आहिंसा आदि गुणों की प्राप्ति के लिए शिक्षा पद्धति निर्दिष्ट है। इस पर चलकर मानव जीवन को सन्तुलित एवं सुव्यवस्थित करता हुआ, मानव आध्यात्मिक विकास की उंचाइयों पर पहुंच सकता है।

शिक्षार्थी के लक्षण-शिक्षार्थी के लिए आवश्यक है कि ज्ञानदाता गुरुजनों के प्रति उसका व्यवहार विनयपूर्ण हो। "उकाराध्ययनसूत्र में विनीत शिक्षार्थी के बारे में कहा गया है- "जो गुरु की आज्ञा का पालन करता है, गुरु के सानिध्य में रहता है, गुरु के संकेत एवं मनोभावों को जानता है, वह विनीत शिष्य कहा जाता है।"

गुरु जैन ग्रन्थों में गुरु के लिए आचार्य, धर्माचार्य, उपाध्याय आदि शब्दों के भी प्रयोग देखने को मिलते है। मूलाचार में गया है जो आचारवेळा है. सदा आचार का आवरण करते हैं और दूसरों

से करवाते हैं. वे आचार्य है। "भगतवतीसूत्र में सद्गुरु के लक्षणों को बताते हुए कहा गया है कि जो सूत्र और अर्थ दोनों के ज्ञाता हो, उत्कृष्ट कोटि के लक्षणों से युक्त हो, संघ (छात्रों के लिए मेदि के समान हो, संघ को सभी प्रकार के सन्तापों से पूर्णतः विमुक्त रखने में सक्षम हों तथा जो अपने शिष्यों को आगमों की गूढ़ अर्थसहित वाचना देते हो. वे सद्गुरू है।"

गुरू शिष्य सम्बन्ध प्राचीन काल में छात्र गुरुकुल में अपने सहपाठियों एवं शिक्षकों के साथ रह कर शिक्षा प्राप्त करते थे। जिसमें गुरु और शिष्य दोनों निकट सम्पर्क में रहते थे और उनकी यह निकटता एक रसता के भाव को जोड़ने वाली होती थी। जैन शिक्षा पद्धति में गुरु शिष्य सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हुए जैन विद्वान डॉ. जगदीचन्द्र जैन ने लिखा है " अध्यापक और विद्यार्थी के सम्बन्ध प्रेमपूर्ण हुआ करते थे और विद्यार्थी अपने गुरुओं के प्रति अत्यन्त श्रद्धा और सम्मान का भाव रखते थे।

निष्कर्ष-

जैन शिक्षा का उद्देश्य आध्यात्मिक शिक्षा के साथ साथ लौकिक शिक्षा भी रहा है। परन्तु जैन शिक्षा पद्धति ने लौकिक शिक्षा को अन्तिम उद्देश्य नहीं मान बल्कि मुख्य उद्देश्य निर्वाण की प्राप्ति रहा है। शिक्षा का सम्बन्ध सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने से रहा है। समाज को दुर्प्रवृत्तियों से रक्षा करने के लिए नैतिक शिक्षा दी जाती थी। जैन शिक्षा का संबंध समानरूप सभी वर्ग विशेष के लोगों को शिक्षा प्रदान करने का रहा है। इस समय गुरू-शिष्य में आपस में प्रेमभाव भी भी शिष्य अपने गुरु के प्रति विनयवान रहता था। जैनाचार्यने शिक्षा का माध्यम मातृभाषा और लोकभाषाओं को बनाया, यही कारण है कि उस समय की लोक भाषाओं प्राकृत अर्धमागधी प्राकृत, शौरसेनी प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में साहित्य का सृजन हुआ। इसकी का प्रतिफल है कि आधुनिक बुनियादी शिक्षा मातृभाषा में प्रदान की जा रही है।

वर्तमान में प्रासंगिकता-

वर्तमान में यदि जैन शिक्षा के तत्वों को आधुनिक शिक्षा पद्धति में
समावेश कर लिये जाये तो काफी हद तक विश्व की समस्याओं का समाधान मिल सकता है और शिक्षा में व्याप्त विसंगतियों से निजात पा सकते है जैसे गुरू शिष्य के बिगड़ते हुए सम्बन्ध, छात्रों में बढ़ते हुए अनाचार, हिंसा, झूठ, चोरी आदि जैन शिक्षा का प्रभाव सहस्रों वर्षों के बाद आज भी भी देखा जाये तो जैन धर्मावलम्बियों में अपराध की प्रवृत्ति नहीं के बराबर है। यह नैतिक शिक्षा का ही प्रभाव है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

[1]. आदिपुराण में प्रतिपादित भारत- डॉ. नेमिचन्द्र आचार्य
[2]. आदिपुराण आचार्य जिनसेन
[3]. जैन एवं बौद्ध शिक्षा दर्शन एक तुलनात्मक अध्ययन- विजय कुमार
[4]. भगवती आराधना
[5]. उत्तराध्ययन सूत्र